मध्यकालीन भारत

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 8750187501

Web: www.drishtiias.com
E-mail : drishtiacademy@gmail.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिए निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

पूर्व मध्यकालीन भारत (800 से 1200 ई.)

उत्तर भारत : तीन साम्राज्यों का काल (आठवीं से दसवीं सदी तक)

750 और 1000 ईस्वी के मध्य उत्तर भारत और दक्षिण भारत में कई शक्तिशाली साम्राज्यों का उदय हुआ। इनमें से तीन वंश ऐसे थे, जिन्होंने आपस में संघर्ष किया। यह संघर्ष कन्नौज पर आधिपत्य के लिये हुआ। इनमें से एक था पाल वंश, जिसका नवीं सदी के मध्य तक पूर्वी भारत में एक शक्तिशाली राज्य था। पश्चिमी भारत और उत्तरी गंगा की घाटी में दसवीं सदी तक प्रतिहार राजवंश का प्रभुत्व था। उधर दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों का वर्चस्व था, जो समय-समय पर उत्तर भारत के प्रदेशों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते थे। वस्तुत: इन तीनों शक्तिशाली साम्राज्यों के मध्य संघर्ष चलता रहा। यद्यपि इन साम्राज्यों के शासकों ने काफी बड़े-बड़े क्षेत्रों में शांति स्थापित की एवं साहित्य तथा कला को संरक्षण दिया। इन तीनों में सबसे अंत तक शासन राष्ट्रकूट वंश ने किया। वह न केवल उस काल का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य था, बल्कि उसने आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य सेतु का भी काम किया।

सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध से ही कन्नौज भारत की राजनीति का केन्द्र बिंदु रहा था। उस काल में उत्तरी भारत पर आधिपत्य का कोई भी दावा कन्नौज पर अधिकार के बिना निरर्थक था। कन्नौज तथा उसके मध्यदेश का सामरिक महत्त्व भी था, क्योंकि पालों के लिये मध्य भारत तथा पंजाब और प्रतिहारों एवं राष्ट्रकूटों के लिये गंगा दोआब में पहुँचने के मार्ग पर कन्नौज से ही नियंत्रण होता था। इसके अतिरिक्त गंगा-यमुना दोआब, जो प्रचुर मात्रा में राजस्व का स्रोत था। अत: इस पर बिना नियंत्रण किये कोई भी साम्राज्य शक्तिशाली नहीं हो सकता था।

त्रिपक्षीय संघर्ष के चरण

कन्नौज पर अधिकार के लिये 8वीं सदी के मध्य से आरंभ हुए राष्ट्रकूट, पाल तथा गुर्जर-प्रतिहार राजवंश के मध्य के युद्ध को त्रिपक्षीय संघर्ष के नाम से जाना जाता है।

प्रतिहार शासक वत्सराज द्वारा कन्नौज पर आक्रमण के साथ ही संघर्ष की शुरुआत हुई। कन्नौज का शासक, इंद्रायुध पराजित हुआ तथा उसने वत्सराज का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। प्रतिहार गंगा-यमुना के संगम तक पहुँच गए थे और पालों (बंगाल के शासक) का प्रभाव प्रयाग तक बढ़ गया था। परिणामस्वरूप युद्ध अवश्यंभावी हो गया। प्रतिहार नरेश वत्सराज एवं पाल नरेश धर्मपाल के मध्य उत्तर भारत पर विस्तार के लिये संघर्ष आरंभ हो गया। राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव ने इस संघर्ष में हस्तक्षेप किया एवं सबसे पहले वत्सराज को पराजित किया। त्रिपक्षीय संघर्ष में राष्ट्रकूट ही दक्षिण भारत की ऐसी पहली शक्ति थी, जिसने उत्तर भारत की राजनीति में हस्तक्षेप किया तथा दक्षिण से उत्तर भारत पर आक्रमण किया। संभवत: धर्मपाल ने भी ध्रुव का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। फिर ध्रुव दक्षिण को लौट गया। इन घटनाओं से अंतत: धर्मपाल लाभान्वित हुआ। धर्मपाल ने इन घटनाओं का लाभ उठाते हुए कन्नौज पर आक्रमण कर इंद्रायुध को अपदस्थ कर दिया तथा उसकी जगह चक्रायुध को कन्नौज का शासक नियुक्त किया। चक्रायुध ने धर्मपाल का आधिपत्य स्वीकार कर लिया तथा धर्मपाल ने 'उत्तरापथस्वामिन्' की उपाधि धारण की। हालाँकि इन घटनाओं के बारे में स्पष्ट तिथि का अभाव है।

त्रिपक्षीय संघर्ष के द्वितीय चरण में दो शक्तियाँ ही विद्यमान हुईं। बंगाल का धर्मपाल और गुर्जर प्रतिहारों का वत्सराज। कन्नौज क्षेत्र में इस समय आयुध वंश के दोनों भाई इंद्रायुध और चक्रायुध आपस में संघर्षरत थे। कन्नौज नरेश चक्रायुध को पाल नरेश के संरक्षण के कारण स्वामित्व प्राप्त हुआ था।

त्रिपक्षीय संघर्ष का तृतीय चरण तब प्रारम्भ हुआ, जब प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय ने 806-07 ई. के आसपास कन्नौज पर आक्रमण किया तथा चक्रायुध और धर्मपाल को पराजित कर 810 ई. में कन्नौज को अपनी राजधानी बना लिया। धर्मपाल अब राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय से मिल गया तथा गोविन्द तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण किया तथा नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया। इसके पश्चात् गोविन्द तृतीय दक्षिण वापस चला गया। प्रतिहारों और पालों की प्रतिद्वंद्विता पुन: प्रारंभ हो गई, जिसमें पालों का पक्ष मजबूत था।

इस समय प्रतिहार वंश के शासन की बागडोर एक अत्यंत पराक्रमी शासक मिहिरभोज प्रथम के हाथों में थी तथा इसी ने प्रतिहार शक्ति का पुनरोत्थान किया। उसने 836 ई. में कन्नौज पर आक्रमण किया, किंतु देवपाल द्वारा पराजित हो गया। 850 ई. में देवपाल की मृत्यु के बाद पाल शक्ति का पतन होने लगा। इसी बीच मिहिरभोज ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली तथा अंतत: 854 ई. के आसपास कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस समय राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष ने हस्तक्षेप नहीं किया, क्योंकि चालुक्य शासक से उसका संघर्ष चल रहा था। कन्नौज पर अब प्रतिहार शासक शासन करने लगे।

कन्नौज पर राष्ट्रकूटों ने दो बार और आक्रमण किये, पहला इन्द्र तृतीय द्वारा 915 ई. में तथा दूसरा कृष्ण तृतीय द्वारा 963 ई. में। हालाँकि प्रतिहार शासक कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल रहे, किंतु जल्दी ही उनके साम्राज्य का पतन हो गया।

त्रिपक्षीय संघर्ष का प्रभाव

त्रिपक्षीय संघर्ष, तीनों शक्तिशाली (प्रतिहार, राष्ट्रकूट, पाल) शक्तियों के लिये विनाशकारी साबित हुआ। तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि प्रतिहार कन्नौज पर अपना शासन स्थापित करने में सफल हुए तथा राष्ट्रकूट अपने पारंपरिक शत्रु प्रतिहारों की शक्ति विनष्ट करने में सफल हुए। चूँकि पालों ने इस संघर्ष से अपने को पहले से ही अलग कर लिया था, लेकिन वे अपनी खोई हुई शक्ति को दोबारा प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके। इस संघर्ष के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि इससे उत्तरी भारत की शक्तियों की फिर से गुटबंदी आरंभ हो गई। उत्तर भारत की राजनीति में अब राजपूत शासकों का प्रभाव बढ़ने लगा तथा क्षेत्रीय राज्यों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने लगी, जिससे कोई भी राजवंश उत्तर एवं दक्षिण भारत पर एकछत्र राज्य स्थापित नहीं कर सका तथा बाह्य शक्तियाँ भारत पर आक्रमण करने लगीं।

1. बंगाल का पाल राजवंश

पाल वंश की स्थापना संभवत: 750 ई. के आसपास बंगाल (गौड़) में हुई थी। शशांक की मृत्यु के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक बंगाल में अराजकता और अव्यवस्था का माहौल बना हुआ था। उस क्षेत्र में फैली अराजकता से तंग आकर वहाँ के प्रमुख लोगों ने गोपाल को शासक चुना। यह पहला राजा था, जिसका जनता के द्वारा निर्वाचन हुआ। उसने गौड़ में फिर से सुव्यवस्था स्थापित की तथा करीब दो दशकों तक शासन किया। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था तथा उसने ओदंतपुरी महाविहार की स्थापना भी की थी। 770 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र धर्मपाल राजा बना।

धर्मपाल ने बंगाल पर 770 से 810 ई. तक शासन किया। उसने राज्य का सर्वप्रथम विस्तार किया। कुछ समय के लिये उसने कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित किया था तथा उसने 'उत्तरापथस्वामिन्' की उपाधि धारण की। वह बौद्ध धर्मानुयायी था किंतु वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। बिहार और आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश पर अपना-अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिये पालों और प्रतिहारों के मध्य संघर्ष चलता रहा, यद्यपि बंगाल के साथ-साथ बिहार पर पालों का ही अधिक समय तक नियंत्रण कायम रहा।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र देवपाल अगला शासक बना। देवपाल ने 810 से 850 ई. तक शासन किया तथा इसने भी साम्राज्य विस्तार की नीति जारी रखी। उसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया तथा प्राग्ज्योतिषपुर (असम) और उड़ीसा के कुछ हिस्सों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। संभवत: आधुनिक नेपाल के एक हिस्से पर भी पाल प्रभुत्व स्थापित हो गया तथा उसने तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के शैलेन्द्र साम्राज्य (सुमात्रा) से अपना सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध बनाए रखा। सुमात्रा के एक शासक, बलपुत्रदेव ने उससे नालंदा में एक मठ की स्थापना की अनुमति भी प्राप्त की। अरब यात्री सुलेमान ने देवपाल की शक्ति का वर्णन एवं साम्राज्य विस्तार की जानकारी दी है। देवपाल की मृत्यु के बाद पालवंश का पतन शुरू हो गया। उसके उत्तराधिकारी नारायण पाल को प्रतिहार शासक मिहिरभोज तथा महेन्द्रपाल के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा तथा उसने, उनके हाथों मगध का क्षेत्र भी खो दिया। उसके उत्तराधिकारी राज्यपाल ने राष्ट्रकूटों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके, खोये हुए क्षेत्र को पुन: प्राप्त किया।

पाल वंश का पुनरुद्धार महिपाल के द्वारा हुआ किन्तु चोल शासक राजेन्द्र प्रथम के आक्रमण (1022-23) से राज्य को आर्थिक, सामाजिक क्षति उठानी पड़ी। महिपाल का उत्तराधिकारी नयपाल था, जिसने प्रारंभ में कलचुरियों से युद्ध किया, किंतु बाद में कलचुरी राजकुमारी से विवाह कर लिया।

नयपाल की मृत्यु के बाद अव्यवस्था फैल गई, जिसका अंत रामपाल ने किया। उसने उत्तरी बंगाल, असम, उड़ीसा पर पुन: नियंत्रण स्थापित किया किंतु सेन शासकों के हाथों पूर्वी बंगाल तथा मिथिला (कर्नाटों के हाथों) को खो दिया। संध्याकर नंदी के रामचरित का नायक वही है।

पाल वंश का अंतिम शासक गोविन्द पाल था। यह संभवत: बख्तियार खिलजी के आक्रमण के समय बंगाल में शासन कर रहा था, हालाँकि यह नाममात्र का शासक था तथा 12वीं शताब्दी के अंत में बंगाल का पाल राज्य, सेनवंश के अधिकार में चला गया।

पालकालीन संस्कृति

मूर्तिकला

पाल काल में कांस्य एवं प्रस्तर मूर्तिकला की एक नवीन शैली का उदय हुआ। धीमन और बिथपाल ने मूर्तिकला के क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान दिया, जो धर्मपाल और देवपाल के समकालीन थे। इस समय की कांस्य मूर्तियाँ ढलवाँ किस्म की हैं। इसके साक्ष्य नालंदा तथा कुक्रीहार (गया के निकट) से मिले हैं, ये मूर्तियाँ मुख्य रूप से बुद्ध, बोधिसत्व, मंजुश्री, मैत्रेय तथा तारा की हैं। हालाँकि इस काल की विष्णु, बलराम, सूर्य, उमा, महेश्वर, गणेश आदि हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी मिली हैं। बोधगया में अवस्थित चतुर्भुज महादेव की मूर्ति धर्मपाल के शासनकाल में निर्मित हुई।

शिक्षा एवं साहित्य

पालवंशीय शासकों ने नालंदा, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, सोमपुरी आदि में बौद्ध विहार एवं भवन बनवाए। गोपाल ने नालंदा में बौद्ध विहार बनवाया था। धर्मपाल ने विक्रमशिला और सोमपुर के विहारों की स्थापना तथा नालंदा महाविहार को 200 गाँव दान दिये थे। पाल शासकों ने तिब्बत, चीन और दक्षिण-पूर्वी एशिया के शैलेन्द्र राज्य से मित्रता की थी। बौद्ध विद्वान अतीश दिपंकर ने तिब्बत जाकर वहाँ महायान मत का प्रचार-प्रसार किया।

पाल स्थापत्य एवं चित्रकला

इस काल में वास्तुकला मुख्यत: ईंट पर आधारित थी। नालंदा विश्वविद्यालय ईंटों से निर्मित है। बिहार एवं बंगाल में मिले अवशेषों में चैत्यों और विहारों के साथ-साथ तालाबों का भी निर्माण करवाया गया था।

इस काल के चित्र मुख्यत: ताड़ पत्र पर बने हुए हैं। इनमें काले, नीले, लाल, बैंगनी तथा हल्के गुलाबी रंगों का प्रयोग हुआ है। पालकालीन चित्रकला पर तांत्रिक प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है। नालंदा से कुछ भित्ति-चित्र भी प्राप्त हुए हैं।

दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ पाल शासकों के व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध थे। दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार काफी लाभदायक था।

2. गुर्जर-प्रतिहार वंश

गुर्जर-प्रतिहारों का उद्‌भव गुजरात या दक्षिण-पश्चिम राजस्थान में हुआ था। गुर्जर-प्रतिहारों ने 8वीं शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी तक शासन किया। इस राजवंश का संस्थापक **हरिश्चन्द्र** को माना जाता है।

नागभट्ट प्रथम के राज्यकाल में प्रतिहारों की शक्ति और सुदृढ़ हो गई। इस राजवंश के चौथे शासक वत्सराज ने प्रतिहार राज्य को साम्राज्य में बदलने का प्रयास किया। इसी के समय त्रिपक्षीय संघर्ष प्रारंभ हुआ था, जिसमें इसने भाग लिया, लेकिन पालों तथा राष्ट्रकूटों ने उसकी महत्त्वाकांक्षा पर अंकुश लगा दिया।

प्रतिहार साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक और इस राजवंश का महानतम शासक भोज था। उसने 836 ई. के लगभग कन्नौज पर कब्जा कर लिया और कन्नौज प्रतिहार राज्य की राजधानी लगभग एक सदी तक बनी रही। भोज ने पूर्व की ओर विस्तार करना चाहा, किन्तु पाल शासकों ने उसे परास्त कर दिया। अरब यात्रियों के विवरण से ज्ञात होता है कि प्रतिहारों के पास भारत में सबसे अच्छी अश्वारोही सेना थी। क्योंकि इस समय मध्य एशिया और अरबदेश से घोड़ों का आयात भारतीय

व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। पाल शासक देवपाल की मृत्यु के पश्चात् भोज ने पूर्व की ओर भी अपने साम्राज्य का विस्तार किया। भोज विष्णु का भक्त था और उसने 'आदिवराह' का विरुद धारण किया था। उसके कुछ सिक्कों पर 'आदिवराह' शब्द अंकित है। उज्जैन के भोज परमार से उसका अंतर बताने के लिये उसे मिहिरभोज भी कहा जाता है।

भोज की मृत्यु संभवत: 885 ई. के आसपास हुई। उसके बाद उसका बेटा प्रथम महेन्द्रपाल राजा बना। उसने मगध तथा उत्तरी बंगाल को जीता तथा पूर्व साम्राज्य विस्तार को सुरक्षित रखा। उसने काव्य मीमांसा तथा कर्पूरमंजरी के रचयिता राजशेखर को संरक्षण प्रदान किया। बगदाद के यात्री अल-मसूदी ने 915-16 ई. में गुजरात की यात्रा की थी।

915 ई. से 918 ई. के मध्य राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण कर नगर को तहस-नहस कर दिया। इससे गुर्जर-प्रतिहार वंश कमजोर हो गया। संभवत: गुजरात राष्ट्रकूटों के अधिकार में चला गया। 963 ई. में कृष्ण तृतीय (राष्ट्रकूट राजा) ने उत्तर भारत पर आक्रमण करके प्रतिहार शासक को परास्त कर दिया। इसके पश्चात प्रतिहार साम्राज्य का पतन हो गया।

प्रतिहार शासक ज्ञान-विज्ञान और साहित्य के उदार संरक्षक थे। संस्कृत का महान कवि और नाटककार राजशेखर, भोज के पौत्र महिपाल के दरबार में रहता था। प्रतिहार शासकों ने कई भव्य भवन और मंदिर बनवाए तथा इस काल में भी भारत और पश्चिम एशिया के बीच विद्वानों का आदान-प्रदान और वाणिज्य-व्यापार चलता रहा।

3. राष्ट्रकूट राजवंश

इस राज्य की स्थापना दंतिदुर्ग (735-755 ई.) ने की थी, जिसने आधुनिक शोलापुर के निकट मान्यखेट या मालखेड़ को अपनी राजधानी बनाया। राष्ट्रकूट शासकों ने जल्द ही उत्तर महाराष्ट्र के पूरे प्रदेश पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। दंतिदुर्ग ने काँची, कलिंग, मालवा आदि क्षेत्रों में साम्राज्य विस्तार किया। इसके पश्चात् कृष्ण प्रथम (756-772) ने साम्राज्य को विस्तृत किया। वह कला प्रेमी था, उसने एलोरा का सुप्रसिद्ध कैलाश मंदिर बनवाया। राष्ट्रकूट वंश का त्रिपक्षीय संघर्ष में आगमन ध्रुव (780-93) के शासनकाल में हुआ। उसने वत्सराज और धर्मपाल, दोनों ही को पराजित किया था।

गोविंद तृतीय (793 ई.-793 ई.) और अमोघवर्ष (814 ई.-878 ई.) राष्ट्रकूटकालीन महान शासक हुए। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि गोविंद तृतीय ने केरल, पांड्य तथा चोल राजाओं को भयभीत कर दिया और पल्लवों को श्रीहीन बना दिया।

अमोघवर्ष धर्म और साहित्य में अधिक रुचि लेता था। वह स्वयं कन्नड़ लेखक था और उसे राजनीति पर कन्नड़ की प्रथम कृति की रचना करने का श्रेय दिया जाता है। अमोघवर्ष के शासनकाल में अनेक विद्रोह हुए जिन्हें बड़ी मुश्किल से दबाया गया था।

इस वंश का अंतिम प्रतापी राजा कृष्ण तृतीय (934 ई. से 96 ई.) हुआ। उसे मालवा (परमार) और वेंगी के शासकों (चालुक्य, पूर्वी) से युद्ध करना पड़ा। इसने तंजौर के चोल शासक के विरुद्ध भी सैनिक अभियान किया। चोलों ने काँची के पल्लवों का राज्य छीन लिया था लेकिन कृष्ण तृतीय ने चोल-राजा परांतक प्रथम को पराजित करके (949 ई.) चोल साम्राज्य के उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। कृष्ण तृतीय की मृत्यु के पश्चात सभी विरोधी शासक उसके उत्तराधिकारी के खिलाफ एकजुट हो गए और 972 ई. में राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट को जीतकर उन्होंने वहाँ आग लगा दी। इसके साथ ही राष्ट्रकूट साम्राज्य का अंत हो गया।

दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट शासन 10वीं सदी के अंत तक लगभग दो सौ वर्ष तक चलता रहा। राष्ट्रकूट शासक धार्मिक सहिष्णु थे। उन्होंने न केवल शैव और वैष्णव धर्म को प्रश्रय दिया बल्कि जैन धर्म को भी बढ़ावा दिया। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम ने एलोरा में शिव मंदिर नवीं सदी में बनवाया था। अमोघवर्ष जैन मतानुयायी था।

राष्ट्रकूट राजा कला और साहित्य के महान संरक्षक थे। उनके दरबार में न केवल संस्कृत के विद्वान थे, बल्कि अनेक ऐसे कवि और लेखक भी थे, जो प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखते थे। महान अपभ्रंश कवि स्वयंभू और उसके पुत्र राष्ट्रकूट दरबार में ही रहते थे। इस काल के प्रसिद्ध विद्या केन्द्रों में कन्हेरी के बौद्ध विहार की चर्चा की जा सकती है। इन्होंने पल्लव स्थापत्य शैली से प्रेरणा ली और इसे अधिक उन्नत स्वरूप प्रदान किया। ठोस चट्टानों को काटकर मंदिरों को बनाने की कला इस काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

राष्ट्रकूट काल में कन्नड़ तथा संस्कृत भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना हुई थी, जिनमें प्रमुख हैं-

- जिनसेन - आदिपुराण, हरिवंश
- महावीराचार्य - गणितसार संग्रहण
- अमोघवर्ष - कविराजमार्ग

विविध

- धर्मपाल एक उत्साही बौद्ध था, उसके लेखों में उसे परमसौगात कहा गया है तथा उसकी राजसभा में प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान हरिभद्र निवास करते थे।
- देवपाल के उत्तराधिकारी विग्रहपाल (850-854 ई.) ने अपने पुत्र नारायणपाल के पक्ष में सिंहासन छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया।
- नारायण पाल ने शिव के सम्मान में एक हजार मंदिरों का निर्माण करवाया।
- महिपाल प्रथम को पाल वंश का दूसरा संस्थापक माना जाता है। इसके काल में राजेन्द्र चोल ने बंगाल पर आक्रमण किया तथा पाल शासक महिपाल को पराजित किया।
- रामपाल के ही शासन काल में कैवर्तों का विद्रोह हुआ था, जिसका उल्लेख रामपाल चरित में मिला है।
- नवीं शताब्दी के मध्य में सुलेमान यात्री ने पाल साम्राज्य को 'रूहमा' कहा था।
- राष्ट्रकूट बादामी के चालुक्यों के सामंत थे।
- दन्तिदुर्ग ने उज्जयिनी में 'हिरण गर्भ' (महादान) यज्ञ किया, जिसमें प्रतिहार राजा ने द्वारपाल का काम किया था।
- राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम 756 ई. में शासक बना, जिसने बादामी के चालुक्यों के अस्तित्व को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।
- राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय ने पल्लव, पाण्ड्य, केरल तथा गंग राजाओं द्वारा बनाए गए संघ को ध्वस्त कर दिया।
- अमोघवर्ष ने 'कविराजमार्ग' नामक कन्नड़ भाषा में एक काव्य ग्रंथ की रचना की तथा मान्यखेत नामक नया नगर बसाया तथा इसी को अपने राज्य की राजधानी बनाया।
- कृष्ण तृतीय ने रामेश्वरम् में कृष्णेश्वर तथा गण्डमार्तण्डादित्य नामक मंदिर बनवाए। उसकी राजसभा में कन्नड़ भाषा का कवि पोन्न निवास करता था, जिसने शांतिपुराण की रचना की थी।
- 974-75 में चालुक्य राजा तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूट वंश के अंतिम शासक कर्क द्वितीय को परास्त करके राष्ट्रकूट राज्य पर अधिकार कर लिया।
- प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम (730-756 ई.) ने अरबों के आक्रमण को रोका तथा ग्वालियर प्रशस्ति में उसे 'म्लेच्छों का नाशक' बताया गया है।
- भोज वैष्णव धर्मानुयायी था। उसने आदिवाराह तथा प्रभास जैसी उपाधियाँ धारण कीं, जो उसके द्वारा चलाए गए चाँदी के द्रम्म सिक्कों पर भी अंकित हैं।
- महेन्द्रपाल प्रथम ने परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर जैसी उपाधियाँ धारण की थीं। इसकी राजसभा में प्रसिद्ध विद्वान राजशेखर निवास करते थे जो इसके राजगुरु थे। राजशेखर ने कर्पूरमंजरी, काव्यमीमांसा, विद्धशालभंजिका, बालभारत, बालरामायण, भुवनकोश तथा हरविलास जैसे प्रसिद्ध जैनग्रंथ की रचना की।
- राजशेखर ने महिपाल को आर्यावर्त का महाराजाधिराज कहा।
- ह्वेनसांग ने गुर्जर-प्रतिहार राज्य को पश्चिमी भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य कहा है।
- प्रतिहार वंश का अंतिम शासक यशपाल (1036 ई.) था।

चोल राजवंश

नवीं से बारहवीं शताब्दी तक चोल शासकों का राजनैतिक **वर्चस्व** बना रहा। इन्होंने न सिर्फ एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, बल्कि शक्तिशाली नौसेना भी गठित की, जिससे बाह्य देशों (श्रीलंका आदि) पर भी अपना नियंत्रण स्थापित किया तथा साथ ही साथ उन्होंने हिंद महासागर क्षेत्र में भारत के समुद्री व्यापार का मार्ग प्रशस्त किया। चोल साम्राज्य को मध्यकालीन दक्षिण भारतीय इतिहास की चरम परिणति कहा जा सकता है।

राजनैतिक इतिहास

चोल शासक दक्षिण भारत में पल्लवों के अधीनस्थ सामंतों के रूप में कार्यरत थे। 850 ई. में विजयालय ने तंजौर पर कब्जा कर लिया। इसी ने चोल राजवंश की स्थापना की थी। उसने परकेसरी की उपाधि धारण की। उसने पल्लव एवं पाण्ड्य शासकों के बीच संघर्ष का लाभ उठाकर अपनी स्थिति मजबूत की। विजयालय के उत्तराधिकारी एवं उसके पुत्र आदित्य प्रथम (887-900 ई.) ने पल्लव शासक अपराजित को (890 ई.) युद्ध में हराकर मार डाला। उसी ने पाण्ड्य (मदुरा) और गंग (कलिंग) शासकों को हराकर अपने साम्राज्य को और अधिक सुदृढ़ किया। इसके उत्तराधिकारी परातक प्रथम (907-953 ई.) ने साम्राज्य विस्तार को और विस्तृत किया तथा 915 ई. में उसने श्रीलंका की सेना को वेल्लूर के युद्ध में पराजित किया। किन्तु इस समय राष्ट्रकूट शासक भी शक्तिशाली थे। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय ने 949 ई. में तक्कोलम के युद्ध में चोल सेना को पराजित किया। 953 ई. में परातक प्रथम की मृत्यु हो गई।

राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय की मृत्यु (965 ई.) के उपरांत राष्ट्रकूट साम्राज्य का विघटन होना शुरू हुआ। चोल शक्ति का पुनः जीर्णोद्धार 985 ई. में राजराज प्रथम (985 से 1014) के अधीन आरंभ हुआ। उसने अनेक विजयों के पश्चात एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। 994 ई. से 1002 के मध्य उसने सैनिक अभियान किये तथा उसने चेर, पाण्ड्य, चालुक्य (पूर्वी एवं पश्चिमी दोनों को) तथा कलिंग के गंग शासकों को पराजित किया। 1004 ई. से 1012 ई. के मध्य नौसैनिक अभियान के क्रम में उसने अनुराधापुर (श्रीलंका) के उत्तरी क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित कर लिया और उसका नाम मुम्मडी चोलमंडलम् रखा। उसने मालदीव पर भी विजय प्राप्त की। इन सभी विजयों की जानकारी तंजौर एवं तिरुवलंगाडु अभिलेखों से प्राप्त हुई है।

राजराज प्रथम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र राजेन्द्र प्रथम (1014 ई. से 1044 ई.) था। राजराज प्रथम की विस्तारवादी नीति को आगे बढ़ाते हुए राजेन्द्र प्रथम ने पांड्य और चेर राजवंश का पूर्णतः उन्मूलन करके अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने 1017 ई. में अनुराधापुर के दक्षिणी क्षेत्र को जीतकर इस भाग को पूर्णतः अपने साम्राज्य में मिला लिया। इन सैनिक कार्रवाइयों का उद्देश्य अंशतः यह था कि दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ होने वाले व्यापार पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके। कोरोमंडल तट तथा मालाबार दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ भारत के व्यापार के मुख्य केन्द्र थे। 1022-23 के बीच उसने बंगाल पर सफल सैनिक अभियान किया और महिपाल को पराजित किया। इसी अवसर पर उसने 'गंगैकोंडचोलपुरम्' की उपाधि धारण की तथा तंजौर के नजदीक गंगैकोंडचोलपुरम् को राजधानी बनाया। राजेन्द्र प्रथम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विजय 1025 ई. में श्री विजय की थी। उसने श्री विजय के शासक संग्राम विजयोत्तुंगवर्मन को पराजित कर अपनी संप्रभुता उस पर स्थापित की थी।

चोल काल का अगला शासक राजाधिराज (1044-52) अनेक विद्रोहों और उपद्रवों से परेशान था। उसने अनुराधापुर (श्रीलंका) में हुए विद्रोह का दमन किया। कोपन्न के युद्ध में उसने चालुक्य शासक सोमेश्वर को हराकर उसकी शक्ति को कमजोर किया। किंतु इसी युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। इसके पहले अपनी सैनिक सफलताओं के उपलक्ष्य में अश्वमेध यज्ञ किया और जयगोंडचोल की उपाधि धारण की। राजाधिराज का अगला उत्तराधिकारी, उसके भाई राजेन्द्र द्वितीय (1052-63) ने रणभूमि में ही अपना राज्याभिषेक कराया और युद्ध में सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् वीर राजेन्द्र (1063-70 ई.) शासक बना। उसने विक्रमादित्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया तथा दोनों में मैत्रीपूर्ण संबंध बन गए। वीर राजेन्द्र के उत्तराधिकारी अधिराजेन्द्र को जनता ने उसके राज्यारोहण के पश्चात तुरंत राजगद्दी से हटा दिया।

लगभग 1070 ई. कुलोतुंग प्रथम शासक बना। उसका पिता चालुक्य वंश का शासक (विमलादित्य) था और उसकी माँ चोल राजकुमारी थी। अब चोल और चालुक्य वंश एक हो गए। इसने युद्धनीति त्याग कर जनकल्याणकारी कार्य किये। 1077 ई. में उसने चीन के सम्राट के समक्ष अपना दूत भेजकर व्यापारिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। इसके पश्चात् के उत्तराधिकारियों में विक्रमचोल (1120-35 ई.), कुलोतुंग तृतीय (1135-50 ई.), राजराज प्रथम तृतीय (1210-50 ई.) और राजेन्द्र तृतीय (1250-67 ई.) शामिल हैं। राजेन्द्र तृतीय (1250-67 ई.) की मृत्यु के बाद चोल वंश का इतिहास समाप्त हो गया।

चोल साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण लगातार युद्ध और संघर्ष था, जिसने राज्य के आर्थिक और सैनिक संसाधनों का ह्रास किया। परवर्ती चोल शासकों की कमजोरी और नए राज्यों, विशेषकर पाण्ड्य एवं होयसल वंशों के उत्कर्ष और उनके द्वारा चोल राज्य के क्षेत्रों पर आक्रमण ने भी साम्राज्य को बहुत ज़्यादा कमजोर किया।

चोल प्रशासन

चोल कालीन प्रशासन एक केन्द्रीय प्रशासन था। इसका निम्न रूप में विभाजन था-

राष्ट्र → मण्डलम (प्रांत) → वलनाडु → नाडु → कोट्टम → गाँव

केन्द्रीय प्रशासन का प्रमुख राजा होता था तथा साथ ही साथ शासन का सर्वोच्च अधिकारी भी। उसका पद वंशानुगत था और ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा का उत्तराधिकारी माना जाता था। राजा चक्रवर्तिगल, त्रिकाल, सम्राट जैसी उच्च सम्मानपरक उपाधियाँ धारण करते थे। मंदिरों में सम्राट की प्रतिमा स्थापित की जाती थी तथा मृत्यु के बाद दैव रूप में पूजा की जाती थी जैसे- तंजौर के मंदिर में सुंदरचोल (परांतक द्वितीय) तथा राजेन्द्र चोल की प्रतिमाएँ स्थापित की गई थीं।

राजा की सहायता के लिये दरबारी अधिकारियों की सभा थी जो उदनकुट्टन कहलाती थी। रायलसम् विभाग आज के आधुनिक डाक विभाग की तरह कार्य करते थे। केन्द्रीय अधिकारी दो श्रेणियों में विभाजित थे। पहली श्रेणी को उच्च स्तरीय अधिकारी पेरून्दनम् और दूसरी श्रेणी को निम्न स्तरीय अधिकारी शिरूदनम कहलाते थे। अधिकारियों को पारिश्रमिक के रूप में भू-अनुदान दिया जाता था, जिसे जीवित कहा जाता था। विदपिल नामक अधिकारी विभिन्न क्षेत्रों की यात्रा करके स्थानीय प्रशासन पर निगरानी रखते थे।

चोल साम्राज्य मंडलों या प्रांतों में विभाजित था, जिनकी संख्या 8 या 9 थी। मंडलम, वलनाडुओं और नाडुओं में बँटे होते थे। कभी-कभी राज परिवार के सदस्य प्रांतीय शासक नियुक्त किये जाते थे। अधिकारियों को वेतन भूमिदान द्वारा भुगतान किया जाता था। वलनाडु प्रशासनिक इकाई थी। नाडु लगान-वसूली से संबंधित थी। नाडु का प्रशासन नाडु-वगाय नामक अधिकारी देखते थे।

राजस्व प्रशासन

चोल राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर था। भूमिकर ग्राम-सभाएँ एकत्र करके सरकारी कोष में जमा करती थीं। इसके लिये चोल शासकों ने समस्त भूमि की माप करवाई तथा उसकी उत्पादकता के आधार पर कर का निर्धारण किया। जैसे- राजराज प्रथम और कुलोतुंग प्रथम के समय में क्रमशः एक और दो बार भूमि की माप करायी गई थी। कर 1/2 से 1/4 भाग तक होता था। इसे कड़माप या कडिमैं (भू-राजस्व) कहते थे। चोल काल में भूमि की 12 से भी अधिक किस्मों का उल्लेख मिलता है। प्रत्येक ग्राम तथा नगर में रहने के स्थान, मंदिर, तालाब, कारीगरों के आवास, शमशान आदि सभी प्रकार के करों से मुक्त थे। पिंडारी (ग्राम्यदेवी) के लिये, बकरों की बलि का स्थान, कुंभकार, स्वर्णकार, लौहकार, रजक, बढ़ई आदि के निवास स्थानों को भी कर मुक्त रखा गया था।

- राजस्व विभाग की पंजिका को **वरित्योतगकणवक** कहा जाता था, जिसमें सभी प्रकार की भूमि के विवरण दर्ज़ किये जाते थे।
- कृषकों को यह सुविधा थी कि वे भूमिकर नगद अथवा अनाज के रूप में चुका सकते थे।
- चोलों के स्वर्ण सिक्के कलंजु या पोन् कहे जाते थे।
- अकाल आदि दैवीय आपदाओं के समय भूमिकर माफ कर दिया जाता था।
- दक्षिण भारत में तालाब ही सिंचाई के प्रमुख साधन थे। जिनके रखरखाव की ज़िम्मेदारी ग्राम सभाओं की होती थी, तालाबों की मरम्मत के लिये एरिआरम् नामक कर भी वसूल किया जाता था।
- लोगों के कर न देने पर दण्ड की व्यवस्था थी जैसे- पानी में डुबो देने और धूप में खड़ा कर देने का भी उल्लेख मिला है। उदाहरण के लिये– तंजौर के कुछ ब्राह्मण लगान चुकाने में असमर्थ होने पर अपनी ज़मीन छोड़कर गाँव से भाग गए तथा उनकी ज़मीन पड़ोस के मंदिर को बेच दी गई।
- बकाए कर पर ब्याज भी लिया जाता था।
- केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होने पर जनता ने विद्रोह किया, क्योंकि उनसे अन्यायपूर्ण कर वसूल किया जा रहा था जैसे- राजराज तृतीय और कुलोतुंग प्रथम के समय।

- भूमिकर के अतिरिक्त व्यापारिक वस्तुओं, विभिन्न व्यवसायों, खानों, वनों, उत्सवों आदि पर भी कर लगते थे।
- राज्य की आय का व्यय अधिकारी तंत्र, निर्माण कार्यों, दान, यज्ञ, महोत्सव आदि पर होता था।
- राजस्व विभाग के प्रमुख अधिकारी को वरित्योतगकक कहते थे। जो अपने-अपने अधिकार क्षेत्र के आय-व्यय का हिसाब रखते थे।

सैन्य शासन

चोल राजाओं ने एक विशाल संगठित सेना का निर्माण किया था। चोल शासक कुशल योद्धा थे और वे व्यक्तिगत रूप से युद्धों में भाग लिया करते थे। अश्व, गज, रथ एवं पैदल सैनिकों के साथ एक अत्यंत शक्तिशाली नौ सेना थी। इसी नौ सेना की सहायता से उन्होंने श्रीविजय, सिंहल, मालदीव आदि द्वीपों की विजय की थी। कुछ सैन्य दल नागरिक कार्यों में भाग लेते थे तथा मंदिरों आदि को दान किया करते थे। सैनिकों को वेतन में राजस्व का एक भाग या भूमि देने की प्रथा थी। लेखों में बडपेई (पैदल सैनिक), बिल्लिगल (धनुर्धारी सैनिक), कुडिरैच्चेवगर (अश्वारोही सैनिक), आनैयाटक कुजीरमल्लर (गजसेना) आदि का उल्लेख मिला है।

न्याय प्रशासन

- न्याय के लिये नियमित न्यायालयों का उल्लेख उनके लेखों में हुआ है जैसे- धर्मासन (राजा का न्यायालय) तथा धर्मासन भट्ट।
- न्यायालय के पंडितों (न्यायाधीश) को धर्मभट्ट कहा जाता था, जिनके परामर्श से विवादों का निर्णय किया जाता था।
- दीवानी एवं फौजदारी मामलों में अंतर स्पष्ट नहीं है।
- नरवध तथा हत्या के लिये दंड व्यवस्था थी कि अपराधी पड़ोस के मंदिर में अखण्डदीप जलवाने का प्रबंध करे। वस्तुत: यह एक प्रकार का प्रायश्चित था किन्तु मृत्युदंड दिये जाने के भी उदाहरण प्राप्त हुए हैं।
- राजद्रोह भयंकर अपराध था, जिसका निर्णय स्वयं राजा द्वारा किया जाता था। इसमें अपराधी को मृत्युदंड के साथ ही साथ उसकी संपत्ति भी जब्त कर ली जाती थी। 13वीं सदी के चीनी लेखक चाऊ-जू-कुआ ने चोल दंड व्यवस्था के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की है।

ग्रामीण या स्थानीय स्वायत्तता

चोलकालीन प्रशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता ग्रामीण स्तर पर स्थानीय शासन या स्वायत्तता की व्यवस्था थी। चोलकालीन अभिलेखों की प्रचुरता के कारण हमें इस साम्राज्य के ग्राम प्रशासन की अधिक जानकारी प्राप्त है। इसके लिये विभिन्न गाँवों में स्थानीय प्रशासन का काम प्रतिनिधि संस्थाओं के माध्यम से संचालित होता था। अभिलेखों में दो सभाओं का उल्लेख मिलता है—उर सभा या महासभा। उर गाँव की आम सभा थी। किसी भी गाँव के वयस्क, पुरुष करदाताओं के द्वारा उर या ग्राम या मेलग्राम का संचालन होता था। सभा या महासभा, अग्रहार कहे जाने वाले ब्राह्मणों व गाँवों के वयस्क सदस्यों की सभा थी। अग्रहार गाँवों में ब्राह्मण लोग निवास करते थे और वहाँ की अधिकांश भूमि लगान मुक्त होती थी तथा इन्हें काफी स्वायत्तता मिली हुई थी। सभा या महासभा के कार्य संचालन के लिये समितियाँ होती थीं। ये समितियाँ थीं— वरियम् और वरियार। इन समितियों के प्रमुख कार्य होते थे-

- करों की वसूली, करों को लगाना एवं माफ करना।
- न्यायिक कार्य, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की देखरेख।
- कृषि का विकास एवं समुचित व्यवस्था करना।
- मंदिरों की देखरेख इत्यादि।

ग्रामीण प्रतिनिधि सभाओं के अतिरिक्त नगरम् नामक प्रतिनिधि सभा की भी चर्चा मिली है, जो व्यापारियों के हितों और उनकी गतिविधियों की देख-रेख करती थी। ग्रामीण समिति के संचालन, सदस्यों का चुनाव एवं निष्कासन आदि की जानकारी उत्तरमेरूर के दो अभिलेखों से मिलती है, जो क्रमश: 919 ई. एवं 921 ई. के हैं। इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इन

सभाओं के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्येक वर्ष किया जाता था एवं इसके अंतर्गत 1/3 सदस्य प्रत्येक वर्ष बदल दिये जाते थे, जबकि सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष के लिये होता था। प्रत्येक गाँव को 30 वार्डों में बाँटा गया था। चुनाव लड़ने की निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहियें थीं–

- वह उस गाँव का निवासी हो जहाँ से चुनाव लड़ रहा हो।
- 30 से 70 वर्ष तक उम्र तथा शिक्षित भी हो।
- वह 1/4 वेलि भूमि का मालिक हो।
- उसका अपना मकान हो।
- वह वैदिक मंत्रों का ज्ञाता हो।

सदस्यों को कार्यकाल के दौरान हटाने का प्रावधान भी था–

- यदि किसी सदस्य ने तीन वर्ष तक खर्च का लेखा-जोखा प्रस्तुत नहीं किया हो।
- किसी अपराध में दोषी पाए जाने पर।
- किसी भ्रष्टाचार मामले में संलिप्त पाए जाने पर।

चुनाव किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की नींव होती है। इसकी जानकारी चोल अभिलेखों से मिली है। आधुनिक चुनाव प्रक्रिया के समान ही ग्रामीण शासन के लिये चुनाव क्षेत्रों का विभाजन किया गया था। इतना ही नहीं चुनाव के लिये आवश्यक था, व्यक्ति उसी गाँव का निवासी हो अर्थात ऐसे व्यक्ति का चुनाव किया जाए जिसे स्थानीय परिस्थितियों की जानकारी हो। सदस्यों को चुनाव लड़ने के लिये भी योग्यता का प्रावधान किया गया था। किसी भी शासन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिये यह आवश्यक है कि योग्य एवं अनुभवी लोगों को शासन संचालन की ज़िम्मेदारी सौंपी जाए। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि अयोग्य लोगों को शासन से बाहर अर्थात् भ्रष्ट एवं अपराधी लोगों को शासन संचालन से बाहर रखा जाए।

इस प्रकार ग्राम सभा प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण इकाई हुआ करती थी, जो स्थानीय स्तर पर कार्यपालक, विधायी एवं न्यायिक प्रकृति को सम्पन्न करती थी। यदि ये संस्थाएँ अपने दायित्वों का निर्वहन ईमानदारीपूर्वक करती थीं तो वह बहुत हद तक केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त थीं। राजा भी यदि कोई नियम बनाता था तो वह ग्राम सभाओं से परामर्श जरूर लेता रहा होगा। आरंभ में ये सभाएँ बहुत हद तक स्वायत्त थीं, लेकिन उत्तरकालीन चोलों के समय केन्द्रीय हस्तक्षेप बढ़ता गया। सामान्यत: आपसी कलह, हिंसा एवं महत्त्वपूर्ण विवादों की स्थिति में राज्य हस्तक्षेप करता था। कई बार केन्द्रीय कर्मचारियों की उपस्थिति में ही ग्राम सभाओं के प्रस्ताव पारित किये जाते थे।

महत्त्वपूर्ण राज्यों के संस्थापक एवं उनकी राजधानियाँ

राज्य	राजधानियाँ	संस्थापक	राज्य	राजधानियाँ	संस्थापक
चोल	तंजौर	विजयालय	चालुक्य (वेंगी)	वेंगी	विष्णुवर्द्धन
कलचुरि वंश	त्रिपुरी	कोकल्ल	चालुक्य वातापी	वातापी (वल्लभी)	जयसिंह प्रथम
प्रतिहार	उज्जैन, कन्नौज	हरिश्चंद्र	पाल	मुंगेर	गोपाल
राष्ट्रकूट	मान्यखेत	दंतिदुर्ग	वाकाटक	नंदिवर्द्धन	विंध्यशक्ति
परमार	उज्जैन, धारा	उपेन्द्र या कृष्णराज	चंदेल	खजुराहो	नन्नुक
गहड़वाल	कन्नौज	चंद्रदेव	सोलंकी वंश	अन्हिलवाड़	मूलराज प्रथम
कल्याणी के चालुक्य	मान्यखेत	विजयादित्य	चौहान	अजमेर	वासुदेव
सेन राजवंश	काशीपुर, लखनौती	सामंतसेन	शाही वंश	उद्भाण्ड	कल्लर
पल्लव	काँचीपुरम्	सिंहविष्णु	लोहर वंश	कश्मीर	संग्राम राज
उत्पल वंश	कश्मीर	अवन्ति वर्मन	कार्कोट वंश	कश्मीर	दुर्लभवर्द्धन
मालवा के परमार	उज्जैन	सीयक या श्रीहर्ष	जेजाकभुक्ति के चंदेल	खजुराहो	नन्नुक